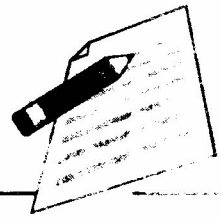

Notes

# 2

# समाजशास्त्र का उद्‌भव और विकास

पिछले पाठ में आप समाजशास्त्र की प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र के विषय में पढ़ चुके हैं। इस पाठ में आप पश्चिमी देशों एवं भारत में समाजशास्त्र के आविर्भाव एवं विकास के विषय में अध्ययन करेंगे।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- एक विषय के रूप में समाजशास्त्र के उद्‌भव के कारणों को समझ सकें;
- पश्चिम में समाजशास्त्र के विकास के इतिहास का वर्णन कर सकें; एवं
- भारत में समाजशास्त्र के विकास के इतिहास का वर्णन कर सकें।

## 2.1 पश्चिम में समाजशास्त्र का अविर्भाव

मनुष्य का सदैव अपने समाज के बारे में जानने और इसके बारे में विचार करने की प्रवृत्ति रही है। पिछले इतिहास का अध्ययन करें, तो हम पाते हैं कि समाजवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि उस समय भी पाई जाती थी। हम कह सकते हैं कि यद्यपि इस विषय का इतिहास बहुत लम्बा नहीं है पर निश्चित ही इसका अतीत बहुत बड़ा है। कुछ विद्वान

Notes

समाजशास्त्र के उद्भव के सूत्र कौटिल्य के अर्थशास्त्र और **अरस्तु** की राजनीति में पाते हैं। उदाहरण के लिए, अरस्तु के कथन **''मनुष्य राजनैतिक ( यानि सामाजिक ) प्राणी है,''** में समाजशास्त्र के बीज हैं। कुछ अन्य विद्वान इसके सूत्र फ्रांसिसी विद्वानों, विशेषकर मोंटेस्क्यू, के लेखन में ढूंढते हैं, जिन्होने समाजों का वर्गीकरण किया, जिसमें सरलतम शिकारियों एवं खाद्य संग्राहकों के वर्ग शामिल हैं। अत:, जब भी हमें किसी प्राचीन समाज को समझना होता है तो हम प्राचीन उच्च साहित्य की मदद लेते हैं। फिर भी, हमें यह समझना चाहिए कि किसी समाज और उसके मामलों को समझने में रुचि लेना और समाज का अध्ययन एक विषय के रूप में करना दो अलग बाते हैं। अपने समाज को समझने की वृत्ति तो मानव में सदा से ही रही है, पर एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का प्रादुर्भाव, 1789 की फ्रांसिसी क्रांति के बाद ही हुआ।

> फ्रांसिसी क्रांति ने समाज में जबरदस्त सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन ला दिये, जो बाद में पारिवारिक जीवन और दूसरे सामाजिक संबंधों में विघटन के कारण बने।

इस पृष्ठभूमि में, कुछ तत्कालीन सामाजिक चिन्तकों का सरोकार अपने समाज का नव निर्माण था। इनमें से एक चिन्तक थे **क्लॉडे हेनरी डे सेंट-साईमन**। उन्होंने कहा कि समाज में परिवर्तन लाने के लिए पहले हमें इसके सभी पहलुओं का अध्ययन करना चाहिए, ताकि हम समझ सकें कि समस्या का मूल कहाँ है। चिन्तन के इसी क्रम को सेंट-साइमन के शिष्य **आंगस्त कॉम्टे ( 1798-1857 ) ने आगे बढ़ाया जिन्हें समाज विज्ञान का पिता' माना जाता है।** कॉम्टे ने तर्क रखा कि जो विधियाँ हम भौतिकी के अध्ययन में इस्तेमाल करते हैं वही समाज के अध्ययन में भी उपयोग की जानी चाहिए। इस तरह के अध्ययन से समाज के उद्भव के नियम प्रकाश में आयेंगे और समाज के कार्य करने के नियमों का ज्ञान होगा। एक बार यह ज्ञान उपलब्ध हो तो हम वैज्ञानिक आधार पर समाज का निर्माण कर सकेंगे। इस प्रकार सामाजिक पुनर्रचना का कार्यक्रम समाज संबंधी वैज्ञानिक समझ का अनुकरण करेगा। आगे के पृष्ठों में हम प्राचीन एवं आधुनिक समाजशास्त्री चिंतकों के विचारों पर चर्चा करना चाहेंगे।

**ऑगस्त कॉम्टे** ने, जिन्होंने समाजशास्त्र को इसका नाम दिया, मानव समाज के विकास के तीन चरणों की पहचान की:

**धर्मविज्ञान परक:** पहले चरण में विभिन्न प्रक्रमों की व्याख्या का आधार धर्म था, इस चरण को धर्मविज्ञान परक कहा गया।

**अभौतिक:** इसका परिवर्ती चरण अभौतिकीय था, जिसमें सभी व्याख्याएँ दार्शनिक थीं।

**प्रत्यक्षवाद:** मानवीय चिन्तन के विकास का अन्तिम चरण प्रत्यक्षवाद था, जिसमें प्रक्रमों की व्याख्या सामाजिक जगत के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से की जाती थी।

विकासवाद के विचार को अंग्रेज समजशास्त्री **हर्बर्ट स्पेंसर** (1820-1903) के कार्यो ने आगे बढ़ाया। इनके तीन खंडों के ग्रंथ का शीर्षक *समाजशास्त्र के सिद्धान्त हैं* (1876, 1882, 1896), जिसमें इन्होंने विकास वाद के सिद्धान्त की सार्वभौमिकता के विषय में तर्क दिए।

स्पेंसर को पूरा विश्वास था, कि समाज भी उसी प्रकार विकसित होते हैं जैसे जीव-प्रजातियाँ/ जैसे-जैसे पीढ़ियाँ गुजरती हैं समाज के सर्वाधिक योग्य एवं बुद्धिमान (सर्वाधिक उपयुक्त) सदस्य बचे रहते हैं जबकि कम योग्य समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार, समय बीतने पर समाज अधिकाधिक विशिष्ट और सर्वोत्कृष्ट हो जाता है।

स्पेंसर ने इस सिद्धान्त को "योग्यतम की उत्तर जीविता" नाम दिया। हालांकि यह वाक्यांश स्पेंसर ने गढ़ा था, पर, प्राय: यह उनके समकालीन चार्ल्स डारविन के नाम के साथ जोड़ा जाता है, जिन्होंने बाद में यह सुझाया कि जीवित प्राणी, समय के साथ विकसित होते हैं ताकि वह अपने वातावरण की स्थितियों में जीवित बने रह सकें। दोनों विचारों में समानता के कारण स्पेंसर का समाजों के विकास का विचार 'सामाजिक डार्विनिज्म' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अमेरिका में ऑगस्त कॉम्टे एवं हर्बर्ट स्पेंसर के समाज विज्ञान का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व लेस्टर वर्ड (1814-1913) ने किया। उन्होंने सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक समाजशास्त्र में अन्तर किया और तर्क दिया कि वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से सामाजिक उत्कर्ष संभव होना चाहिए।

> समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विषय एवं विज्ञान के रूप में विकसित करने का श्रेय **एमाइल दुर्खीम** (1858-1917) को भी दिया जाता है, जो एक फ्रांसिसी समाजशास्त्री थे। वह कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक थे जो अभी भी पढ़ी जाती हैं, जैसे कि *समाज में श्रम विभाजन* (1893), *समाजवैज्ञानिक विधियों के नियम* (1895), *आत्महत्या: एक समाजवैज्ञानिक अध्ययन* ([illegible]), एवं *धार्मिक जीवन के प्रारंभिक रूप* (1915)।

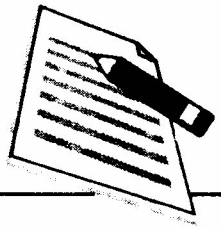

Notes

**एमाइल दुर्खीम** ने कहा कि समाजशास्त्री, 'सामाजिक तथ्यों' का अध्ययन करते हैं, जो वस्तुपरक हैं और समूहों की चेतना में विद्यमान रहते हैं। सामाजिक तथ्यों के उदाहरण हैं, विवाह के नियम, कानून, रिवाज, अनुष्ठान और विभिन्न प्रकार के सामाजिक आंकड़े आदि। अतः सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व मानवीय मानस के बाहर है, पर, यह मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करता है। अतः सामाजिक तथ्यों का उद्गम व्यक्ति में नहीं है। उनकी व्याख्या दूसरे सामाजिक तथ्यों के प्रयोग से ही हो सकती है जीवविज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय या भौगोलिक तथ्यों के द्वारा नहीं।

आत्महत्या पर अपनी पुस्तक में **दुर्खीम** ने दर्शाया है कि यद्यपि आत्महत्या व्यक्तिगत कार्य है आत्महत्या की दर व्यक्तिगत नहीं है। प्रतिवर्ष, प्रति हजार व्यक्तियों में जितने व्यक्ति आत्महत्या करते हैं वह उस समाज की आत्महत्या दर कहलाता है। आत्महत्या-दर एक सामाजिक तथ्य है, कोई एकल आत्महत्या का मामला नहीं। समय के साथ होने वाला आत्महत्या दर में परिवर्तन समाज में आये परिवर्तनों का द्योतक है। अतः एक पूर्ववर्ती सामाजिक तथ्य किसी दूसरे सामाजिक तथ्य की व्याख्या करता है। दुर्खीम ने दर्शाया, कि इन अर्थों में समाजशास्त्रीय व्याख्याओं की अपनी एक स्वायत्तता है, जो अन्य समाज विज्ञान संबंधी विषयों की व्याख्याओं से अलग है। दुर्खीम का सामाजिक नृविज्ञान पर जबरदस्त प्रभाव है।

जर्मनी में सर्वाधिक प्रभावशाली कार्य **मैक्स वेबर** (1864-1920) का था। वह अपने ग्रन्थों *समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएँ, सामान्य आर्थिक इतिहास, प्रोटेस्टेंट नीतिशास्त्र एवं पूंजीवाद की भावना, एवं सामाजिक एवं आर्थिक संगठनों का सिद्धान्त*, के लिए प्रसिद्ध हैं। दुर्खीम की तुलना में **वेबर ने कहा कि समाजशास्त्री 'सामाजिक क्रियाओं' का अध्ययन करते हैं, जोकि एक ऐसा कार्य है जिसे व्यक्ति अर्थपूर्ण समझता है।** समाजशास्त्री का कार्य, क्रिया के व्यक्तिपरक अर्थ को समझना है। वेबर विशेषकर उन कारकों का अध्ययन करना चाहते थे, जिन्होंने पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद का उभार। उनका कहना है कि प्रोटेस्टैंट धर्म ने कर्म की नैतिकता निर्माण करने में केन्द्रीय भूमिका अदा की। उन्होंने समाजवैज्ञानिक विधियों में भी महत्वपूर्ण योगदान किया।

समाजशास्त्र में जर्मन सामाजिक चिन्तक **कार्ल मार्क्स** (1818-1883) के विचार भी काफी प्रभावी रहे। वास्तव में, वेबर के समाज विज्ञान का बहुत सा भाग मार्क्स के विचारों की प्रतिक्रिया था। मार्क्स ने तर्क दिया कि प्रत्येक समाज, जो दासता से शुरूआत करता है दो वर्गों में बंटा होता है– एक वर्ग उनका जो भूमि, साधनों एवं प्राद्यौगिकी के मालिक होते हैं और दूसरा उनका जिनके पास अपने श्रम के अतिरिक्त

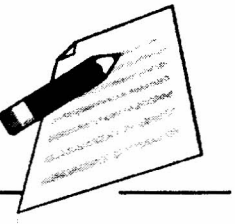



बाजार में बेचने के लिए कुछ भी नहीं होता। व्यक्ति के व्यवहार, प्रेरणा और विचारों को समझने के लिए वर्ग एक प्रासंगिक तत्व है। मार्क्स ने मानव व्यवहार के निर्धारीकरण में ऐतिहासिक कारकों की भूमिका पर बल दिया। मार्क्स का विश्वास था कि संघर्ष सामाजिक परिवर्तन का प्रवर्तक है। इसलिए, उन्होनें संघर्ष को उसी प्रकार केन्द्रीय महत्व का माना जिस प्रकार कॉम्टे जैसे प्रत्यक्षवादियों ने व्यवस्था की भूमिका को माना था।

हमने समाज विज्ञान के फ्रांस (कॉम्टे, दुर्खीम) जर्मनी (मार्क्स, वेबर) और इंग्लैंड (स्पेंसर) में विकास का विवरण दिया। इन विद्वानों के योगदान का दुनियाभर के समाजशास्त्र पर प्रभाव हुआ। बाद में 1929-30 के आसपास जी. एम. मीड, तालकोट पार्सन एवं सी. राईट मिल्स का अमेरिका और विश्व के शेष भागों के समाजशास्त्र पर बहुत प्रभाव पड़ा।

उन्नीसवी शताब्दी और 20वी शताब्दी के शुरू में धीरे-धीरे पश्चिम के विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र विभाग शुरू हुए। उत्तरी अमेरिका में पहला समाजशास्त्र विभाग, 1892 में, शिकागो विश्वविद्यालय में खुला। कनाडा के मेक गिल विश्वविद्यालय में पहला समाजशास्त्र विभाग 1922 में अस्तित्व में आया। अमेरिका में हार्वड विश्वविद्यालय में 1930 में केलिफोर्निया के बर्कले विश्वविद्यालय में 1950 में और प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में 1960 में समाजशास्त्र विभाग खोले गये और येल तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालयों में इनके भी बाद। यद्यपि ब्रिटेन के बहुत से महान समाजविज्ञानियों ने विषय के विकास में योगदान किया यहाँ के विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र विभाग बहुत बाद में खुले। यहाँ तक कि लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में यह 1960 में शुरू हुआ।

## पाठगत प्रश्न 2.1

निम्नलिखित प्रश्नों क उत्तर एक वाक्य में दीजिए:

1. जन विश्वास के अनुसार, अरस्तु के किस कथन ने समाजशास्त्र के बीज बोए?

   ---

2. वह किस वर्ष होने वाली, कौन सी क्रांति थी, जिससे यह माना जाता है कि समाजशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ?

   ---

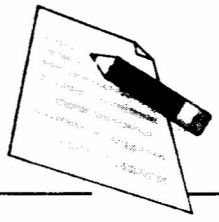

Notes

3. 'समाजशास्त्र के पिता' के रूप में किस व्यक्ति की प्रतिष्ठा है?

---

4. प्रत्यक्षवाद की परिभाषा दीजिए।

---

5. कॉम्टे के अनुसार, मानव समाज विकास के किन विभिन्न चरणों से होकर गुजरा है?

---

6. हर्बट स्पेंसर द्वारा लिखित पुस्तक का नाम लिखिए।

---

7. 1897 में प्रकाशित पुस्तक 'आत्महत्या' का लेखक कौन है?

---

8. मैक्स वेबर द्वारा लिखित किसी एक पुस्तक का नाम लिखिए।

---

## 2.2 भारत में समाजशास्त्र का विकास

भारत में समाजशास्त्र के विकास को तीन काल खण्डों में बाँटा जा सकता है। पहला कालखण्ड, जो 1769 से 1900 तक का है। इस कालखण्ड में, समाजशास्त्र की नीव पड़ी। 1901 से 1950 के दूसरे कालखण्ड में समाज विज्ञान एक विश्वविद्यालयी विषय, एक व्यवसाय बन गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शुरू हुए तीसरे कालखण्ड में, सुनियोजित विकास के कार्यक्रमों, विदेशी विशेषज्ञों के साथ भारतीय समाज विज्ञानियों के बढते विचार विमर्श, शोध के लिए धन की उपलब्धता और शोध एवं प्रकाशनों की व्यवस्था में तेजी आई।

### 2.2.1 भारत में समाजशास्त्र की आधारशिला

भारत में अपना शासन चलाते समय ब्रिटिश अधिकारियों ने यह अनुभव किया कि सुविधापूर्वक प्रशासन चलाने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति का ज्ञान प्राप्त किया जाय। समृद्ध परिवारों और उनके रीतिरिवाजों के विषय में भी सूचनाएँ प्राप्त करने की आवश्यकता थी, क्योंकि, राजस्व-संग्रह के लिए उनको इस्तेमाल किया जाना था। यह विचार किया गया कि यदि स्थानीय समाजों पर उनके कानूनों और रीतिरिवाजों के अनुसार, प्रशासन लागू किया जाय तो शांति और सद्भाव

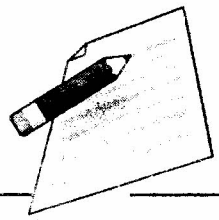

Notes

बना रहेगा। अतः उनके कानूनों और रीतिरिवाजों को सावधानीपूर्वक विस्तार से रिकॉर्ड करने की आवश्यकता थी। इससे भारत में समाजशास्त्र के शुरूआत को प्रोत्साहन मिला।

> 1774 में, विलियम जोन्स ने, 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था भारत की प्रकृति और लोगों का अध्ययन करना।

इस दिशा में प्रथम प्रयास, बंगाल और बिहार के तत्कालीन **गवर्नर वेरेल्स्ट** के पर्यवेक्षण में 1769 में किया गया। फ्रांसिस बुचनन ने 1807 में बंगाल के लोगों का सर्वेक्षण किया। 1816 में एबे डुबॉय नामक मैसूर स्थित फ्रांसिसी मिशनरी ने *'हिन्दु चाल-चलन, रीतिरिवाज एवं अनुष्ठान'* नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने जाति-प्रथा के अभिलक्षण एवं जातियों के बीच अन्योन्यक्रिया का वर्णन किया। 1820 में, वाल्टर हेमिल्टन ने एक गजेटियर प्रकाशित किया, *'हिन्दुस्तान एवं संलग्नित देशों का भौगोलिक, सांख्यिकीय एवं ऐतिहासिक विवरण'* जिसमें भारत की जनसंख्या का अनुमान लगाने की कोशिश की गई थी।

इन कार्यों ने, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए कुछ अधिक क्रमबद्ध अध्ययनों के लिए आधारभूमि तैयार की। **ब्रिटिश सरकार ने, १८७१ में, पहली अखिल भारतीय जनगणना आयोजित की।** जनगणना की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई क्योंकि अकाल राहत, सफाई का प्रबंध, और महामारियों पर नियंत्रण जैसे कई उद्देश्यों के लिए सूचनाओं की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता इसलिए भी थी कि इससे पहले लोग सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण विलुप्त हो जायें, उनके जीवन के विषय में विस्तार से ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए। औपनिवेशिक अधिकारियों (जैसे कि विल्सन, रिज्ले, बैन्स, ब्लन्ट, धरस्टॉन, ओ मॉले, हट्टन, आदि) के प्रयासों के कारण जनगणना, जनसंख्या, समाज और सांस्कृतिक जीवन संबंधी आंकड़े प्राप्त करने का अमूल्य साधन बन गया।

ब्रिटिश प्रशासन प्राचीन भारतीय साहित्य को भी समझना चाहता था, क्योंकि, ऐसे बहुत से विचार जिनके अनुसार लोग जीवन व्यतीत करते थे, इसमें समाहित थे। प्रारंभिक काल से ही धार्मिक परम्पराओं रीतिरिवाजों और कानून से जुड़े मुकदमों का निर्णय करने में न्यायाधीशों की सहाता करने के लिए संस्कृत एवं अरबी के विद्वानों की नियुक्तियाँ की जाती थी। 1776 में, ब्रिटिश न्यायाधीशों की सहायता के लिए हिन्दू कानून पर अंग्रेजी में एक पुस्तक संस्कृत विद्वानों की सहायता से लिखवाई गई। रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के संस्थापक-अध्यक्ष विलियन जोन्स को संस्कृत में विशेष अभिरुचि थी। उनकी पत्रिका *'जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ*

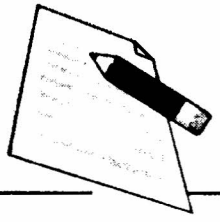

Notes

*बंगाल'* (1784) की एक मुख्य प्रवृत्ति संस्कृत एवं अरबी साहित्य के अध्ययन पर आधारित लेख प्रकाशित करना था। 19वीं शताब्दी में जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने कई प्राचीन भारतीय ग्रंथों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया, जिनको फिर अंग्रेजी में अनुवादित किया गया।

बाद में, उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक में लिखने वाले कई विद्वानों ने इन लेखों का लाभ उठाया। उदाहरण के लिए, हेनरी मैने ने, अपनी दोनों पुस्तकों *प्राचीन कानून* (1861) एवं *पूर्व एवं पश्चिम में ग्राम्य समाज* (1871) में, भारत के बारे में लिखी गई पुस्तकों का संदर्भ दिया है। उन्होंनं भारत का दौरा भी किया। कार्ल मार्क्स एवं मैक्स वेबर, जिनके ग्रंथ, जैसा कि आपने पहले भी ध्यान दिया होगा, समाजविज्ञान के विकास में केन्द्रीय स्थान रखते हैं, दोनों ने ही भारत संबंधी सूचनाओं का उपयोग किया है।

## 2.2.2 भारत में समाजशास्त्र का व्यवसायीकरण

इस काल के प्रारंभिक वर्षों में, ब्रिटिश अधिकारियों ने लोगों की जीवनशैली, रीतिरिवाजों और कानूनों संबंधी अपने अन्वेषण के क्रम को अधिकांशत: जारी रखा। कुक, शेरिंग, थर्सटन, रसल, हीरालाल, एबटसन आदि विद्वानों के पर्यवेक्षण में वर्णों एवं जातियों पर कई ग्रंथों के कई भाग तैयार किये गये। हर भाग में इन समाजों, इनकी जनसंख्या एवं विस्तार के विषय में संक्षिप्त विवरण होता था। इनमें से कुछ भागों में जातियों के वर्णों में रूपान्तरण की संभावना की ओर भी इशारा किया गया था। सर हर्बर्ट रिज्ले ने अपनी पुस्तक, *'पीपल ऑफ इन्डिया'* (1916) में, पहली बार जाति-वर्ण सातत्य पर, ध्यान दिया।

साथ ही साथ, यूरोप के व्यावसायिक समाजविज्ञानियों और नृविज्ञानियों ने भारत में कार्य करना शुरू किया। 1901 से 1902 तक किये गये अपने गहन क्षेत्रकार्य के आधार पर, 1906 में डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स ने नीलगिरि के ग्वाला समुदाय-टोडा लोगों पर एक शोध पुस्तिका प्रकाशित की। फिर उन्होंने अपने शिष्य ए. आर. ब्राऊन (जो बाद में ए. आर. रेडक्लिफ ब्राऊन हो गये) को अंडमान द्वीप के लोगों के बीच रहकर उनका अध्ययन करने के लिए भेजा। ब्राऊन ने अंडमानियों के बीच दो साल (1906-08), बिताए। उनके बारे में ब्राऊन की शोध पुस्तिका 1922 में प्रकाशित हुई। रिवर्स को कलकत्ता विश्वविद्यालय के नृविज्ञान विभाग के पहले अध्यक्ष के रूप में चुना गया लेकिन पदभार संभालने से पहले ही 1921 में उनका देहांत हो गया। कलकत्ता में देने लिए उन्होंने जो भाषण लिखे थे, वे बाद में 1924 में *'सामाजिक संगठन'* शीर्षक की पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए। भारतीय समाजशास्त्र पर उनका प्रभाव उनके शिष्यों जी. एस. धुर्ये एव के. पी. चट्टोपाध्याय के कार्यों द्वारा जारी रहा।

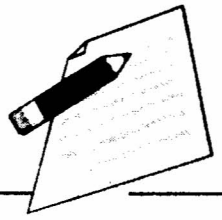



बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में एल. के. अनन्तकृष्ण अय्यर एवं एस. सी. रॉय ने मुख्य योगदान दिया। अय्यर ने केरल के सीरियाई ईसाईयों पर उपयोगी सर्वेक्षण के अलावा कोचिन एवं मैसूर की जातियों और जनजातियों के विवरण लिखे। एस. सी. रॉय जो पेशे से वकील थे ने ओराँव, मुण्डा एवं बिरहोर आदि भारतीय जन जातियों का अध्ययन किया।

> बम्बई में, 1919 में, समाजशास्त्र का एक पूर्ण विभाग अस्तित्व में आया। कलकत्ता में, 1921 में, नृविज्ञान विभाग स्थापित किया गया।

इस दौरान, भारतीय विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र एवं सामाजिक नृविज्ञान को अकादमीय विषय के रूप में शुरू कराने के कदम उठाये गये। 1914 में, बम्बई विश्वविद्यालय ने पूर्व स्नातक स्तर पर समाजशास्त्र का अध्यापन शुरू किया। बम्बई विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का पूर्ण विभाग 1919 में शुरू हुआ। मैसूर विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र 1917 में शुरू हुआ। उसी वर्ष एस. सी. रॉय ने समाजशास्त्र एवं नृविज्ञान की प्रथम पत्रिका "मैन इन इन्डिया" (भारत के लोग) स्थापित की। बम्बई को समाजशास्त्र विभाग ने जी. एस. घुर्ये के नेतृत्व में उन्नति की, जो भारत के विभिन्न भागों से आने वाले अपने प्रत्येक विद्यार्थियों को सलाह देते थे कि वह अपने क्षेत्र विशेष में ही क्षेत्र-कार्य करें और वह उनमें से प्रत्येक के कार्य का व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण करते थे। इस प्रकार घुर्ये ने भारतीय समुदायों पर विशाल साहित्य खड़ा करने में सफलता प्राप्त की। 1951 में उन्होंने इन्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना की और *सोशियोलॉजिकल बुलेटिन* नाम से इसकी पत्रिका शुरू की।

इस दौरान लखनऊ भी समाजशास्त्र एवं नृविज्ञान के एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उभरा। 1921 में **राधा कमल मुखर्जी** के नेतृत्व में अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र का एक संयुक्त विभाग शुरू किया गया। एक साल बाद **डी. पी. मुखर्जी** विभाग में आये और 1928 में डी. एन. मजूमदार को आदिम अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया। इन तीन विद्वानों के कारण लखनऊ समाजशास्त्र एवं नृविज्ञान में अध्यापन एवं शोध के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा। यद्यपि, समाजशास्त्र का एक स्वतंत्र विभाग 1951 में अस्तित्व में आया जो बाद में समाजशास्त्र और समाज-कार्य का संयुक्त विभाग बन गया।

इस काल में भारतीय एवं विदेशी मूल के विद्वानों ने भारतीय समाज के विषय में कई महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रस्तुत किये। एस. सी. रॉय के अतिरिक्त, जे. एच. हट्टन एवं जे. सी. मिल्स नें नागा हिल्स की जनजातियों के विषय में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किये। वेरियर एल्बिन एवं क्रिस्टोफ वॉन फ्यूरर हैमेनडोर्फ ने अपने अध्ययन के सिलसिले में कई वर्ष भारतीय जनजातियों के साथ बिताए और उनके विषय में शोध पुस्तिकाएँ लिखीं।

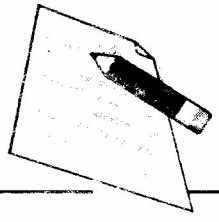

Notes

एल्विन ने कुछ ऐसे तौर-तरीके भी सुझाए जिनसे इन वन्यजातियों की स्थिति में सुधार लाया जा सकता था। डी. एन. मजूमदार ने अपना कार्यक्षेत्र उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में किया और कई प्रतिष्ठित ग्रंथों की रचना की। 1947 में उन्होंने '*द ईस्टर्न एन्थ्रोपोलोजिस्ट*' नाम से एक पत्रिका की भी स्थापना की। एन. के. बोस इस काल के एक और महत्वपूर्ण विद्वान थे और वे जनजातियों में होने वाले परिवर्तन पर किये गये अपने कार्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इस काल खण्ड के अन्तिक दशक में कूर्गों पर किये गये एम. एन. श्री निवास के कार्य को रखा जायेगा जो पहली बार 1942 में मेरिज एण्ड फेमिली इन मसूर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

## 2.2.3 भारत में स्वतंत्रता के बाद समाजशास्त्र का विकास

भारतीय स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाजशास्त्री एवं नृविज्ञानी संयुक्त राज्य अमेरिका के अपने समकक्षों के सम्पर्क में आए। इससे पूर्व उनके अकादमीय संपर्क मुख्यत: ब्रिटिश विद्वानों के साथ थे। भारतीय एवं अमेरिकी समाजविज्ञानियों के कई सहयोगी प्रकल्प शुरू हुए। प्रकाशनों एवं शोध में वृद्धि हुई। समाजशास्त्र एवं सामाजिक नृविज्ञान विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले विषय बन गये, उनके अधिकाधिक विभाग खुले अत: अध्यापन एवं शोध के नये पद निर्माण हुए। दूसरे शब्दों में कहें तो समाजशास्त्र एवं सामाजिक नृविज्ञान की लोकप्रियता में तेजी से वृद्धि हुई।

**समाजविज्ञानियों को योजना एवं विकास के कार्यों में सक्रिय रूप से शामिल किया गया। जनगणना संगठन, केन्द्रीय समाज कल्याण विभाग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति कार्यालय, जनजातीय शोध संस्थान, एवं समुदाय विकास कार्यक्रमों से जुड़े संस्थानों को समाजविज्ञानियों एवं नृविज्ञानियों की आवश्यकता हुई।**

भारत में योजनाबद्ध विकास की शुरूआत भी इन विषयों की लोकप्रियता का अन्य कारण था। न केवल स्थानीय समुदायों की सामाजिक-आर्थिक समस्यों को जानने की आवश्यकता थी, उनके संभावित हल भी सुझाए जाने थे। 1969 में, इन्डियन कॉउन्सिल ऑफ सोशल साइन्स रिसर्च (ICSSR) के आगमन के साथ समाजशास्त्र का और विस्तार हुआ। 1951 में स्थापित इन्डियन सोशियोलोजिकल सोसाइटी, जिसके विषय में पहले बताया गया है कि अतिरिक्त समाजशास्त्रियों के लिए दूसरा राष्ट्रीय मंच 'ऑल इन्डिया सोशियोलोजिकल कान्फरेंस' था जिसकी स्थापना 1955 में आर. एन. सक्सेना ने की थी। लेकिन 1967 में इन दोनों व्यावसायिक संस्थानों का विलय हो गया। तब से, यह संस्था समाजविज्ञानियों के लिए एक वार्षिक सम्मेलन आयोजित करती है, जो देश में एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक परिघटना है।

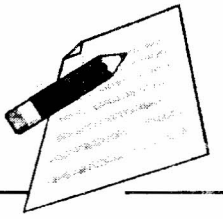

Notes

इस काल में गाँवों संबंधी कई अध्ययन किये गये। इनके निष्कर्ष रूप में कई शोध पुस्तिकाएँ प्रकाश में आईं जिसमें से कुछ की अभी भी अत्याधिक प्रासांगिकता है। उदाहरण के लिए, मैककिम मैरियट द्वारा संपादित ग्रंथ *विलेज इन्डिया* (1955), **एस. सी. दुबे** द्वारा किया गया हैदराबाद के एक गाँव का अध्ययन *इन्डियन विलेज* (1956) एम. एन. श्रीनिवास द्वारा संपादित इन्डियाज विलेजेज (1956)। दूसरे भी कई महत्वपूर्ण कार्य हैं, जो भारत के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद की उपलब्धियाँ हैं। कैथलीन गुह ने तंजौर के एक गाँव का अध्ययन किया और उन परिवर्तनों का विवरण दिया, जो इसमें अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप आए थे। एफ. जी. बैली ने उडीसा के एक गाँव के बारे में लिखा और उन परिवर्तनों को लिपिबद्ध किया जो इसमें तब प्रकट हुए जब वह धरती बाजार के संपर्क में आई। **श्रीनिवास** ने कर्नाटक के एक गाँव का अध्ययन करके 'प्रभुत्व संपन्न जाति' की अवधारणा प्रस्तुत की, यानि ऐसी जाति जिसका न सिर्फ आर्थिक संसाधनों पर प्रभुत्व है वरन सुनिश्चित राजनैतिक वर्चस्व भी रखती है। एस. सी. दुबे ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ गाँवों में योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों और सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया। तमिलनाडु के एक गाँव का अध्ययन करके आन्द्रे बेटील ने दर्शाया कि किस प्रकार वर्ण-प्रणाली में परिवर्तन आये थे।

इसके अलावा, कई भारतीय समुदायों का, जिनमें जातियाँ और जनजातियाँ दोनों शामिल हैं गहराई से अध्ययन किया गया। श्रीनिवास ने, 1940 में कूर्गों पर संग्रहित अपने आँकड़ों पर फिर से कार्य किया और 1952 में प्रकाशित अपनी परिवर्ती पुस्तक में जाति-प्रथा में ऊर्ध्वगामी गति (यानि संस्कृतिकरण) की अवधारणा प्रस्तुत की। लुई डयूमोंट नाम के फ्रांसिसी समाजशास्त्री ने तमिलनाडु के परमलाई कल्लार समुदाय का अध्ययन किया और उनके सामाजिक संगठनों, विशेषकर उनकी विवाह प्रणाली का विवरण दिया। टी. एन. मदान ने काश्मीरी पंडितों के सम्बंधों की प्रकृति एवं परिवारों का अध्ययन किया। सच्चिदानन्द ने बिहार और झारखण्ड के कुछ जनजातीय समूहों का गहन अध्ययन किया। मार्टिन ओराँव के कार्य का फोकस, संथालों पर औद्योगीकरण का प्रभाव रहा। ए. एम. शाह ने गुजरात के एक गाँव में परिवार और कुटुम्ब की गतिकी का अध्ययन किया।

भारतीय समाज के अनुभवजन्य अध्ययन में योगदान के अलावा भारतीय समाजशास्त्रियों ने अपने शोधकार्यों द्वारा महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक दृष्टि भी प्राप्त की है। हम पहले बता चुके हैं कि कुर्गों पर किये गये अपने अध्ययन के आधार पर श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की अवधारणा प्रस्तुत की। सैद्धान्तिक महत्व का दूसरा कार्य ड्यूमोन्ट का था जिन्होनें अपनी पुस्तक *होमो हीराकीकस* में जाति-प्रथा के मूल सिद्धान्तों एवं अभिलक्षणों की विवेचना की है। उन्होंने समाजशास्त्र की एक अग्रणी पत्रिका '*कन्ट्रीब्यूशन्स टू इन्डियन सोशियोलोजी*' भी शुरू की। कई भारतीय समाजविज्ञानियों ने भारतीय परम्पराओं और

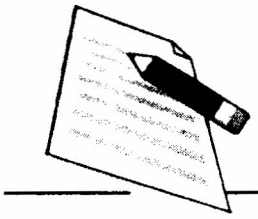

Notes

आधुनिकता के पारस्परिक अन्तर्संबंधों की सैद्धान्तिक छानबीन की। उदाहरणार्थ, योगेन्द्र सिंह का अपनी पुस्तक ''भारतीय परम्पराओं का आधुनिकीकरण' में विश्लेषण पिछले दशक में जातीय, लिंग-संबंधी, हिंसा-संबंधी, विकास संबंधी, स्तरीकरण आदि मुद्दो से जूझने वाले अध्ययनों में वृद्धि हुई है। अस्तु, भारतीय समाजशास्त्र और नृविज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने में सफल हुए हैं।

## पाठगत प्रश्न 2.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. भारतीय समाजशास्त्र को आप कितने काल खण्डों में विभाजित कर सकते हैं?

   ---

2. रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना किस सन् में हुई और किसके द्वारा की गई?

   ---

3. मैक्स मूलर का क्या योगदान था?

   ---

4. 'एन्शिएंट लॉ' नामक पुस्तक किसने लिखी?

   ---

5. डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स ने किस समाज का अध्ययन किया?

   ---

6. कोचिन एवं मैसूर की जातियों और जनजातियों का अध्ययन किसने किया?

   ---

7. पहला नृविज्ञान विभाग कब और कहाँ स्थापित किया गया?

   ---

8. *कन्ट्रीब्यूशन टु इन्डियन सोसायटी* नामक पत्रिका किसके द्वारा शुरू की गई?

   ---

9. कुछ समुदायों के नामों को सूचिबद्ध कीजिए जिनका समाजविज्ञानियों ने स्वतंत्रता के बाद अध्ययन किया है?

   ---

10. जी. एस. घुर्ये ने 1951 में कौन सी व्यावसायिक संस्था स्थापित की?

    ---

## आपने क्या सीखा

- मानव की सदैव अपने समाज को जानने तथा उसके बारे में विचार करने में रुचि रही है परन्तु समाजशास्त्र विषय फ्रांसिसी क्रांति के बाद अस्तित्व में आया।
- ऑगस्त कॉम्टे ने, 1838 में शब्द समाजशास्त्र का प्रयोग किया।
- कॉम्टे ने समाज के वैज्ञानिक अध्ययन का सुझाव दिया, क्योंकि, इस प्रकार एकत्रित ज्ञान सामाजिक उत्थान के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।
- एमाईल दुर्खीम और मैक्स वेबर ने, क्रमश: फ्रांस और जर्मनी में, समाजशास्त्र के विकास में प्रमुख योगदान दिया।
- एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तीव्र गति से विकास हुआ।
- भारत में समाजशास्त्र के विकास के सूत्र औपनिवेशिक शासन तक जाते हैं।
- रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना से समाजवैज्ञानिक शोध में जबरदस्त उछाल आया।
- समाजशास्त्र का पहला पूर्ण विभाग 1919 में बम्बई विश्वविद्यालय में शुरू हुआ।
- स्वतंत्रता के बाद भारत में गाँवों का अध्ययन शुरू हुआ जिसका मुख्य कारण भारतीय समाजविज्ञानियों का अपने अमेरिकी समकक्षों से सहयोग था।
- स्वतंत्रता के बाद भारत में समाजशास्त्र विभागों की संख्या बढ़ी है और इसीलिए शोध-प्रकल्पों में भी वृद्धि हुई है।

## पाठान्त प्रश्न

1. समाजशास्त्र के विकास में एमाईल दुर्खीम और मैक्स वेबर के योगदानों का वर्णन कीजिए।
2. अपने शब्दों में भारत में समाजशास्त्र के विकास का वर्णन कीजिए।
3. एस. सी. रॉय के मुख्य योगदान लिखिए।
4. भारत की स्वतंत्रता के बाद समाजशास्त्र के क्या मुख्य योगदान थे?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**2.1**

1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है
2. 1789 की फ्रांसिसी क्रांति

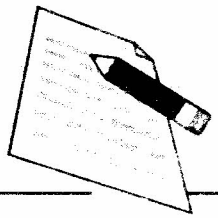

Notes

3. ऑगस्त कॉम्टे
4. जहाँ प्रक्रमों की व्याख्या वैज्ञानिक तौर तरीकों से की जाती है
5. धर्म विज्ञान परक, अभौतिक, प्रत्यक्षवाद
6. समाजशास्त्र के सिद्धान्त 7. एमाईल दुर्खीम
8. समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएँ

**2.2**

1. तीन काल-खण्ड
   1769-1900- समाजशास्त्र की आधारशिला
   1901-1950- समाजशास्त्र व्यवसाय बना
   स्वतंत्रता परिवर्ती- योजनाबद्ध विकास
2. 1774 में, विलियन जोन्स ने रॉयल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की
3. कई प्राचीन भारतीय ग्रंथों का जर्मन में अनुवाद किया जिसका फिर अंग्रेजी में अनुवाद हुआ।
4. हेनरी मैने
5. टोडा नाम का नीलगिरि का ग्वाला समुदाय
6. एल. के. अनन्तकृष्ण अय्यर
7. 1921 में, कलकत्ता में नृविज्ञान विभाग स्थापित हुआ
8. ड्यूमॉन्ट
9. कूर्ग, संथाल, पारामलाई कल्लार
10. उन्होंने इन्डियन सोशियोलोजिकल सोसाइटी की स्थापना की।

## पाठ्य पुस्तकें

1. टी. बी. बॉटोमार: सोशियोलोजी (1927)
2. एलेक्स इन्केल्स : व्हाट इज सोशियालोजी (1993)
3. एन्थॉनी गिड्डेंस : सोशियोलॉजी (1993)
4. डी. एन. धनगरे : थीम्स एण्ड पर्सपेक्टिव्ज इन इन्डियन सोशियोलोजी (1993)
5. योगेन्द्र सिंह : इन्डियन सोशियोलोजी (1986)
6. पी0 के0 बी नायर (संपादक): सोशियोलॉजी इन इन्डिया (1982) 37